संपादकीय

तर्कपूर्ण–न्यायपूर्ण सोच और जिम्मेदारी का एहसास

छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर में इन दिनों खबरों में लगातार बनी हुई दो घटनाएं बताती हैं कि किसी मुद्दे की रीढ़ की हड्डी को हटाकर या अनदेखा करके महत्वहीन मुद्दों पर कैसे बहस हो सकती है या बात आगे बढ़ाई जा सकती है। कांग्रेस के कुछ नेताओं ने कृषि मंत्री चंद्रशेखर साहू पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने अपनी ही एक पुरानी किताब में प्रफुल्ल झा के लिखे एक लेख को अपनी ही नई किताब में अपने नाम से छपवा लिया। प्रफुल्ल झा इस दूसरी किताब के ठीक पहले नक्सल आरोपों में गिरफ्तार होकर जेल पहुंच गए और विचाराधीन कैदी के रूप में वे खबरों में बने हुए हैं। ऐसे में जाहिर है कि उनके नाम से अगर मंत्री की किताब में लेख छपता तो मंत्री की बदनामी होती इसलिए वह लेख अब चंद्रशेखर साहू के नाम पर छपा और जिस तरह उस पूरी किताब को उन्होंने बारीकी से तैयार किया है उसे देखते हुए यह मानने का कोई कारण नहीं है कि नाम का बदलना टाईपिंग की गलती थी। आज इस विवाद में फंसने के बाद चंद्रशेखर साहू ने इसी तकनीकी गलती की आड़ ली है लेकिन बरसों से लिखने–पढ़ने वाले इस भाजपा नेता की आंखों से अपनी ही किताब में ऐसी चूक चली जाए यह तब संभव नहीं है जब वे खुद दस्तखत करके इसकी सैकड़ों प्रतियां बांट चुके हैं। लेकिन इस मुद्दे को छोड़कर आज बहस कांग्रेस और भाजपा के बीच इस बात पर छिड़ गई है कि चंद्रशेखर साहू के नक्सलियों से क्या संबंध हैं। जब किसी राजनीतिक हमले को पटरी से उतारना हो तो उसमें तर्कहीन बातें जोड़ना भर जरूरी होता है और ऐसी बातें इस विवाद में कांग्रेस और भाजपा दोनों की ओर से जोड़ी जा रही हैं। इस बीच पीयूसीएल के राजेंद्र सायल ने छत्तीसगढ़ विशेष जनसुरक्षा कानून का दायरा गिनाते हुए कहा है कि इस कानून के तहत चंद्रशेखर साहू सीधे–सीधे फंसते हैं। उन्होंने इस विवाद का इस्तेमाल करते हुए अपने संगठन की इस पुरानी मांग को दुहराया है कि इस कानून को खारिज किया जाए। लेकिन ऐसी तर्कसंगत बात करने के बजाए कांग्रेस और भाजपा के लोग पुतले जलाने में लगे हैं। जब एक–दूसरे के तर्कों के जवाब में तर्क चूक जाते हैं तो लोग पुतले फूंकने में लग जाते हैं। चंद्रशेखर साहू पर जिन गंभीर पहलुओं को लेकर बात आगे बढ़ सकती थी उन्हें कांग्रेस ने मंझधार में छोड़ दिया है।

दूसरा मामला रायपुर में एक अनाथाश्रम में एक बच्ची को बेचने का है जिसे कि एक स्टिंग ऑपरेशन के तहत सहारा टीवी ने कैद किया था। इस मामले से जुड़े कुछ गंभीर पहलू पहले भी अनदेखे किए जा रहे थे कि इसका संचालक कहां–कहां से कितने बच्चे पा चुका था, कितने बरसों से वह अपनी सरकारी नौकरी पर नहीं जा रहा था, उसे सरकारी कॉलेज से कितने नोटिस मिल चुके थे, वह कितना सरकारी अनुदान पा चुका था। इन तमाम सवालों के जवाब पुलिस पा सके इसके पहले ही कल छत्तीसगढ़ के गृहमंत्री इस आश्रम में पहुंचे और मीडिया के कैमरों के सामने उन्होंने आश्रम को क्लीनचिट थमाते हुए कहा कि उन्हें नहीं लगता कि कोई बच्चा बेचा गया है। उन्होंने इस आश्रम की तारीफ में बहुत सी बातें कहीं। इस मौके पर सारा माहौल वहां मौजूद पुलिस अधिकारियों के सामने ही इतना खुला हुआ था कि अब किसी अफसर से इस मामले की तटस्थ जांच की उम्मीद नहीं की जा सकती। किसी अपराध के मौके पर जाकर वहां गिरफ्तार आरोपी के पक्ष में अगर गृहमंत्री खुलकर बयान देते हैं और उसे प्रमाणपत्र जारी करते हैं तो पुलिस के मामूली जांच अधिकारी की क्या हैसियत हो सकती है कि वह उससे असहमत होते हुए आरोपी को अपराधी साबित कर सके?

देश–प्रदेश में ऐसे बहुत से मामले उठते हैं जिनमें उस मामले की जड़ को अनदेखा करके, छोड़कर, भुलाकर लोग पत्तों को पीटते रह जाते हैं। कई बार तो ऐसा लगता है कि जानबूझकर यह काम होता है ताकि किसी विवाद के एक बार उठ जाने के बाद उस विवाद के आगे बढ़ने की संभावनाओं को खत्म करने के लिए उसे पटरी से ही उतार दिया जाए। पिछले हफ्ते इसी अखबार में एक पाठक का एक लंबा पत्र छपा था जिसने विधानसभा में पिछले दिनों भिलाई के टोल टैक्स नाके की गड़बड़ी उठने के बारे में लिखा था। विधानसभा में यह बात उठी कि भिलाई के टोल ब्रिज संचालक ने किस तरह नियमों के खिलाफ जाकर गलत जगह नाका लगाया और उसकी वजह से वह करोड़ों रुपए नाजायज कमा रहा है। मंत्री ने इस पर जो जवाब दिया उससे किसी भी कोने से जनता के साथ होती हुई खुली बेईमानी पर किसी रोक लगाने की संभावना सामने नहीं आई। लेकिन यह मुद्दा उठा और पानी के बुलबुले की तरह बैठ गया। अब बार–बार तो विधानसभा इस मुद्दे पर चर्चा करने से रही और जनता से हो रही इस लूटपाट के रूकने की कोई संभावना अब नहीं बची।

अदालतों के बारे में भी जानकार लोगों का यह मत है कि बड़े–बड़े जिन उद्योगपतियों के खिलाफ जनहित याचिकाएं लगकर उनके हजारों करोड़ के प्रोजेक्ट रोक सकती हैं, वे उद्योगपति खुद ही कुछ फर्जी जनसंगठनों से बहुत ही आधारहीन या कमजोर तर्कों वाली याचिकाएं अपने ही खिलाफ अदालत में लगवाते हैं और दो–चार बार ऐसी याचिकाओं के खारिज हो जाने के बाद अदालतें उन मुद्दों पर कोई ईमानदार, गंभीर और तर्कपूर्ण याचिका भी मंजूर नहीं करते कि इन मुद्दों पर पहले बहुत बात हो चुकी है। ऐसी मिली–जुली कुश्ती लोगों ने सदन के भीतर, सदन के बाहर, और अदालतों में भी देखी हुई है इसलिए लोगों को यह लगता है कि सब कुछ मैनेज हो जाता है। इसी तरह जब मीडिया में किसी के खिलाफ बहुत कुछ छपता है और फिर एकाएक वह छपना रूक जाता है तो भी लोगों को ऐसा ही शक होता है। हालांकि इस पेशे में होने की वजह से हम यह बात जानते हैं कि किसी कार्रवाई या जांच के शुरू के कुछ दिनों के बाद नई घटनाएं होना कम हो जाता है और उस मुद्दे पर अखबार किसी अभियान की तरह रोज वही बैनर लगाए नहीं निकल सकते। लेकिन जब अखबार किसी मुद्दे की अहम बातों को छोड़कर सतही बातों में उसे उलझा देते हैं और ऐसी बड़ी–बड़ी खबरें लिखते हैं या विचार लिखते हैं जिनमें मुद्दे की सबसे जरूरी बातों को छोड़ ही दिया जाता है तो हमारा मानना है कि वह पाठक को राह से परे ले जाकर उलझाने की एक कोशिश होती है क्योंकि कोई भी अनुभवी या समझदार अखबारनवीस कई बातों को अनदेखा कर ही नहीं सकता।

ऐसे में चौकन्नी जनता और चौकन्ने पाठकों की जरूरत होती है जिस तरह कि एक पाठक ने हमें पत्र लिखकर भेजा और अपने शक जाहिर किए। जनता में जब राजनीतिक चेतना की कमी होती है, सामाजिक सरोकारों के प्रति जिम्मेदारी का एहसास कम होता है, इंसाफ के लिए लड़ने का दमखम नहीं होता तो खासकर सफेदपोश सुविधाभोगी सबसे पहले सच की ओर से आंखें मोड़ते हैं। लोगों को अपने लोकतंत्र की भलाई के लिए सच को उठाने की कोशिश जारी रखनी चाहिए और लोकतंत्र के सभी स्तंभों में चाहे जितनी ही दीमक लगी हो हमारा यह मानना है कि इन सबमें मौजूद विविधता के चलते कोई भी व्यक्ति सबको एक साथ नहीं खरीद सकता और इसी सुरक्षा को लोगों को इस्तेमाल करना चाहिए। एक तर्कपूर्ण, न्यायपूर्ण सोच ही थोड़े से हौसले के साथ मिलकर लोकतंत्र को कदम–कदम पर नुकसान से बचा सकती है।

महिलाओं को मिले बेहतर माहौल

■ संजय कुमार तिवारी
http://mohallalive.com

हम एक ऐसे माहौल मे जी रहे हैं, जहां समाज के बेहतर संचालन मे महिलाओं की भूमिका अपरिहार्य बन चुकी है। और सबसे महत्वपूर्ण है कि समाज भी कटिबद्ध है कि महिलाओं को संपूर्ण अवसर समग्र कार्य क्षेत्र मे प्रदान किये जाएं और एक व्यवस्थित, विकसित समाज के राष्ट्र का निर्माण हो सके। जैसा कि आप जानते हैं कि किसी भी समाज में महिला सिर्फ एक वर्ग नहीं होती बल्कि वह एक धुरी है, जिस पर सारी सभ्यता टिकी हुई है। इस महिला दिवस पर मैं यही सोच रहा हूं कि महिलाओं के समग्र के विकास के लिए हम पूरी निष्ठा से क्या कर सकते हैं।

विभिन्न कार्यस्थलों और कामकाजी परिवारों से बातचीत करने के बाद मैंने ये पाया कि अच्छी तनख्वाह पाने के बावजूद वे न तो ज्यादा बचत कर पाती हैं और न ही तनाव मुक्त जीवन का निर्वाह कर पा रही हैं।ऐसा लगता है कि इन मुश्किलों से उबरने के लिए एक ईमानदार सोच की कमी है। यह कमी बहुत हद तक उस प्रबंधन की है, जो सामाजिक संरचना और संवेदनाओं के प्रति बेहद गैरजिम्मेदाराना ढंग से उदासीन है। इस पहल में हमारी प्रबंधन एवं व्यवस्थापकों से विनती है कि सरकार की मदद से वे एक सर्वमान्य संवैधानिक नियम बनाएं कि सभी कार्य क्षेत्र पर 33 फीसदी जगह महिलाओं के लिए सुरक्षित की जाए। साथ ही उन्हें पुरुषों के बराबर पारिश्रमिक दिया जाए। और सबसे महत्वपूर्ण उनकी कार्य अवधि सुबह साढ़े नौ से साढ़े पांच तक सुनिश्चित किया जाए और शेष कार्य अवधि की जिम्मेदारी पुरुष समाज पर सौंपी जाए।

अगर हम ऐसा करते हैं, तो यह महिलाओं द्वारा सभ्यता के विकास में किए गए योगदान लिए सच्ची श्रद्धांजलि होगी। महिलाएं सिर्फ काम करने वाली मशीन नहीं हैं बल्कि वे तो ममता और प्रेम का ऐसा वृक्ष हैं, जिसकी छांव तले पूरी पीढ़ी जन्नत की खुशी और ठंडक पाती है। यह सामाजिक बदलाव न सिर्फ व्यक्तिगत तौर पर फायदेमंद होगा बल्कि यह प्रत्येक परिवार के लिए बचत का प्रामाणिक संसाधन का माध्यम बन सकता है।

उदाहरण के तौर पर हम समझ सकते हैं कि प्रत्येक कामकाजी परिवार में विभिन्न प्रकार के अनावश्यक व्यय (आउटसोर्सिंग के कारण करना पड़ता है) जो कार्य अवधि की मजबूरी के चलते न चाहते हुए भी करने पड़ते हैं, उसे हम साधारण तरीके से आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए बचा सकते हैं। यह बचत राष्ट्र निर्माण में एवं भावनात्मक समाज के विकास में महत्वपूर्ण हिस्सेदारी साबित होगा। वर्तमान अविवेकपूर्ण कार्य व्यवस्था प्रणाली में मूलतः कामकाजी समाज की आय के व्यय पर उनके स्वतंत्र निर्णय का अभाव प्रतीत होता है क्योंकि मनुष्य की जीवन शैली की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए निश्चित उपलब्ध सेवाओं का उन्हें अधिग्रहण करना पड़ रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि एक व्यवस्थापक समूह ही आय और उसके व्यय पर सुनियोजित तरीके से परोक्ष रूप से नियंत्रण रख रहा है और सरकार भी उनकी इस सुनयोजित धन वापसी व्यवस्था के संचालन में मदद कर रही है। यह एक मामूली परिवर्तन से रोका जा सकता है।

ऐसे व्यय से भी बचा जा सकता है, जिसे वे बाहर के सामानों, परिवार संभालने वाली स्कीमों और खाने–पीने की चीजों की मात्रा कम करके कर सकते हैं। जो कि परोक्ष रूप से परिवार की बचत करने वाली स्कीमों और पारिवारिक सुविधाओं के नाम पर कंपनियों के पैसे उन्हीं के पास चले जाते हैं। अब तक अनियमित दिनचर्या की वजह से मजबूरीवश उन्हें ऐसा करना ही पड़ता था। यही प्रक्रिया अब तक चलती रही है। देखने में तो यह लोकतांत्रिक लगता है, परंतु ऐसा कुछ है नहीं। यह तो दूसरे तरीकों से व्यक्ति को लाभ कमाने वाली मशीन के तौर पर इस्तेमाल करने जैसी बात है, जिसकी भावनाओं से कंपनी का कोई लेनादेना नहीं होता और भावनात्मक उत्तरदायित्व निर्वहन कर रहे अभिभावकों का अपनी नयी पीढ़ी के प्रति अविश्वास बढ़ता जा रहा है। परिणामस्वरूप वह अपने जीवन की कठिन त्याग–तपस्या का निवेश उन्हीं समूहों के लिए कर रहे हैं ताकि भविष्य में उनके लिए एक नया कार्य बल तैयार हो सके और एक सम्मानित अमूल्य अवधारणा के तहत पुरानी हो चुकी कार्यक्षमता को अवकाश दे देते हैं।

वर्तमान में प्रचलित संपूर्ण कार्य पद्धति के विस्तार से अवमूल्यन करने पर यह परिणाम निकलता है कि समाज के वर्ग के पास दुख और अपराधबोध के अलावा कुछ नहीं बचता। जो संस्कार और समृद्धि हमें विरासत में मिले हैं, जिसकी बदौलत हम अपना जीवन हर स्तर पर खुशी से जीते आये हैं, हमारा भी फर्ज है कि आने वाली पीढ़ी को एक बेहतर समाज दें और उस भारतीय पहचान को बनाये रखें, जिस पर हमें गर्व है।

लील रहा समुद्र सुन्दरवन के द्वीपों को

■ मिहिर श्रीवास्तव
http://hindi.indiawaterportal.org

सुन्दरवन डेल्टा के दक्षिण–पश्चिम में एक द्वीप है मौसिमी। इसी द्वीप की गोद में बसा है बालिहार गांव। इस गांव में रहने वाले किसान, मुस्तफा अली खान की 12 बीघा जमीन पिछले साल समुद्र में चली गई। पिछले दस सालों में ऐसा तीसरी बार हुआ है कि मुस्तफा का घर पानी की भेंट चढ़ गया। अब वह मछलियां पकड़कर अपने परिवार के आठ सदस्यों का पेट भर रहा है।

सुन्दरवन के दक्षिणी किनारों पर बसे 13 द्वीप बाढ़ के कारण समुद्री स्तर बढ़ जाने से तेजी से समुद्र में डूब रहे हैं। दो द्वीप– 1000 परिवारों की आबादी वाला लोहाचारा और बंजर सुपारिभंगा, पहले ही समुद्र में डूब रहे हैं। ऐसा चौथी बार हुआ है कि बालिहार में समुद्री जल को रोकने वाली दीवार तक ढह गई है। पांचवी बार अब बन रही है। जिन 20 परिवारों के घर पिछले साल डूब गए वे जी जान से दीवार बनाने में जुटे हैं। समुद्र के किनारों पर निर्माण कार्य के लिए सरकार भी वित्तीय सहायता दे रही है।

सिर्फ एक दिन लगा, पूरा समुन्दर हमारे घरों में उमड़ आया, पुराने सभी तटबन्धों को तोड़कर, सभी कुछ अपने साथ बहा ले गया– इस्लाम बेग को आज भी याद है। उसकी 8 बीघा जमीन थी जिस पर वह धान की खेती करता था इससे न केवल वह अपने परिवार का पेट भरता था बल्कि दूसरी जरूरी चीजों को भी धान के बदले में बाजार से ले आता था। उसके 14 साल के बेटे ने अपने छोटे से जीवन से बहुत से विनाशकारी बदलाव देखे हैं। उसने किनारे से करीब आधा किमी. दूर खड़ी नाव की तरफ इशारा करते हुए बताया, हमारे धान के खेत यहीं थे, सब खत्म हो गया। सिर्फ एक दिन लगा, पूरा समुन्दर हमारे घरों में उमड़ आया, पुराने सभी तटबन्धों को तोड़कर, सभी कुछ अपने साथ बहा ले गया।

पिछले साल जब समुद्र ने सब कुछ निगल लिया तो लोग तीन महीनों तक एक स्थानीय हाई–स्कूल में रहे। उन्होंने सरकारी जमीनों पर, द्वीप के अन्दर ही फिर से नए घर बनाए। बाढ़ में खेत खोने वाले हाली हसन मुल्ला ने कहा, हमें सरकारी जमीन पर घर बनाने की इजाजत तो दी गई लेकिन मालिकाना हक नहीं दिए गए।

अपने घरों और खेतों को बार–बार लहरों की भेंट चढ़ता देखकर भी ये लोग निराश नहीं हैं। 20 वर्षीय शबीर अली खान का कहना है, हम ऐसा फिर से नहीं होने देंगे, अब हम कोई खतरा मोल नहीं लेंगे। इस बार हम विषेशज्ञों की मदद से मजबूत तटबंध बनाएंगे। अगर तटबन्ध फिर से टूट गए तब क्या होगा बेग ने कहा, हम फिर से द्वीप पर जाएंगे, यही सच है, हमें यहीं रहना है।

पास ही के द्वीप–सागर में भी यही हाल है। दक्षिणी तट तेजी से नष्ट हो रहा है। गुरमारा की भी यही कहानी है। पिछले तीन दशकों में इसकी करीब आधी जमीन खत्म हो गई है यहां से कई लोग कलकत्ता चले गए हैं और रिक्शा चलाकर अपनी आजीविका चला रहे हैं।

जादवपुर विश्वविद्यालय में स्कूल आफ ऑशियनोग्राफी स्टडीज की डायरेक्टर सुगाता हाजरा कहती हैं, यह एक नए प्रकार का शरणार्थी वर्ग है। मैं इन्हे आपदा ग्रसित पर्यावरणीय शरणार्थी कहती हूं। ये भूकम्प और सुनामी आदि से विस्थापित हुए लोगों से अलग हैं। क्योंकि ये लोग वापिस नहीं जा सकते, उनकी जमीनें तो हमेशा के लिए खत्म हो गई हैं। सरकार के पास शरणार्थियों के इस वर्ग के लिए कोई योजना नहीं है।

फिलहाल, इन हजारों परिवारों को अब खुद को संभालना है। ऐसी चीजें जब कभी होती है तब प्राकृतिक संसाधनों पर दवाब भी बढ़ने लगता है जिससे खतरा और ज्यादा बढ़ जाता है, डब्लूडब्लूएफ इण्डिया के सुन्दरवन के कॉर्डिनेटर अनुराग टंडन का मानना है। विस्थापित लोग बड़ी मात्रा में ईंधन के लिए मैनग्रोव के पेड़ों पर निर्भर हैं। मैनग्रोव के पेड़ समुद्रतटीय इलाके में प्राकृतिक तटबंध का काम करते हैं। लेकिन इस तरह अन्धाधुंध पेड़ काटे जाने से वहां बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो रही है जिससे समस्या और ज्यादा गहरा रही है।

ग्लोबल वार्मिंग के प्रभावों और उससे समुद्री स्तर में आए उभार के कारण, सुंदरवन डेल्टा पर होने वाले परिवर्तन और ज्यादा बढ़ गए हैं। सुन्दरवन में प्राकृतिक चक्र के अनुसार समय–समय पर कुछ स्थान डूबते हैं और दूसरी ओर कुछ हिस्सा धरातल बन जाता है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि समुद्र स्तर में आए इस उभार ने पुरानी प्रक्रिया को भी बदल दिया है।

प्रणवेश सान्याल, जो जादवपुर विश्वविद्यालय में पढ़ाते हैं और डेल्टा के विशेषज्ञ हैं , कहते हैं, 80 के दशक में जब मैं सुन्दरवन टाइगर रिजर्व का फील्ड डायरेक्टर था, तब मुझे समुद्री स्तर के बढ़ने की बात पर यकीन नहीं था। लेकिन अब मुझे पता है कि ऐसा हो रहा है।

विश्व स्तर पर समुद्री स्तर में प्रतिवर्ष औसतन 1.8 मिमी. तक वृद्धि होती है लेकिन सागर में यह वृद्धि 3.14 मिमी. तक होती है। इसके अतिरिक्त बंगाल बेसिन का निओ–टेक्टोनिक मूवमेंट पूर्व की ओर झुक रहा है, जिसके परिणामस्वरूप जब हम गांगेय डेल्टा के पूर्व में, सागर से बांग्लादेश में खुलाना द्वीप की ओर जाते हैं, वहां समुद्री स्तर में प्रतिवर्ष 10 मिमी. की वृद्धि होती है। **(बाकी पेज 8 पर)**

वतन की तलाश

भारत आए जर्मनी के एक दंपत्ति को किराए की मां के ज़रिए दो बच्चे पैदा हुए। दो साल तक भारत या जर्मनी में से कोई भी देश इन्हें नागरिकता देने को तैयार नहीं था। लेकिन सुप्रीम कोर्ट के सिफारिश के बाद मामला कुछ आगे बढ़ा है। हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने महिला और बाल कल्याण मंत्रालय से कहा है कि वह जर्मन दंपत्ति को इन्हें गोद लेने की अनुमति दे। साथ ही मामले की सुनवाई 16 मार्च तक टाल दी गई है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने साफ़ कर दिया है कि इस मामले को एक अपवाद माना जा रहा है और अन्य मामलों में इसे उदाहरण के तौर पर नहीं लिया जाना चाहिए। इससे पहले भारत सरकार ने कहा था कि जर्मन दंपत्ति बच्चों को गोद नहीं ले सकता।

यह तभी मुमक़िन है जब बच्चों के जैविक मां बाप (बायोलॉजिकल पेरेन्ट्स) ने उन्हें छोड़ दिया हो। इस मामले में बच्चे एक किराए की मां से पैदा हुए थे और दो देशों के बीच गोद लेने का कोई रास्ता नहीं था। जस्टिस अशोक कुमार गांगुली और आरएम लोधा की बेंच ने भारत सरकार से बच्चों के गोद लेने की बात कही थी क्योंकि जर्मनी में सरोगेट मदरहुड या किराए की मां लेना ग़ैर क़ानूनी है।

जर्मनी ने बच्चों को नागरिकता देने से इनकार कर दिया था। भारत सरकार ने भी नागरिकता से इनकार करते हुए कहा था कि किराए की मां से पैदा हुए बच्चों के लिए नागरिकता को लेकर कोई अधिकार नहीं है। बच्चों के माता पिता ने एक आम ज़िंदगी का ख़्वाब देखना छोड़ दिया हैं। दोनों लगभग दो साल पहले भारत आए थे और गुजरात में एक किराए की मां के ज़रिए जुड़वां बच्चे पैदा हुए। बच्चों के पैदा होने के एक हफ़्ते बाद उन्होंने भारत में जर्मन दूतावास से संपर्क किया और कहा कि बच्चे भारत में एक किराए की मां या सरोगेट मां से पैदा हुए हैं। दूतावास ने बच्चों को जर्मन नागरिक बनाने से इनकार कर दिया जिसके बाद दोनों माता पिता एक मुश्किल स्थिति में फंस गए।

जर्मनी में सरोगेसी या किराए की मां लेना ग़ैर क़ानूनी है। भारत में जर्मन राजदूत टोमास माटुसेक का कहना है, यह ग़ैर क़ानूनी इसलिए है क्योंकि यह मानवता के सम्मान को लेकर हमारे विचारों से मेल नहीं खाती। यह हमारे संविधान में लिखा है। माटुसेक ने कहा कि यह दो बच्चे अपनी ग़लती से दुनिया में नहीं आए हैं, लेकिन जर्मन सरकार इन्हें जर्मन नहीं बना सकती। उधर बच्चों के पिता कहते हैं कि उन्हें लगा कि यह जर्मनी में ग़ैर क़ानूनी है, विदेश में नहीं।

परेशानी वैसे यहीं से शुरू होती है। जर्मन सरकार का कहना है कि बच्चे भारतीय है और भारत सरकार कहती है कि बच्चे जर्मन हैं। इस वजह से बच्चे अब किसी देश के नागरिक नहीं हैं। उनके पिता कहते हैं, हम ऐसे में क्या कर सकते हैं? क्या हम बच्चों को छोड़ कर चले जाएं या फिर उन्हें अनाथ आश्रम में डाल दें या किसी से गोद लेने को कह दें। लेकिन जब मैं इन्हें देखता हूं तो मैं इनके साथ अपने आप को जुड़ा महसूस करता हूं। मैं किसी को नहीं जानता जो इस स्थिति में कहे कि मैं जर्मनी में एक आराम की ज़िंदगी जीने के लिए बच्चों को त्याग दूंगा क्योंकि मैं इस स्थिति से जूझ नहीं सकता। उनकी पत्नी वापस जर्मनी जा चुकी हैं ताकि वे कोर्ट कचहरी के लिए अपने पति को पैसे भेज सकें। अगर वे बच्चे को गोद लेते हैं तो शायद कुछ आसानी होगी लेकिन यह प्रक्रिया भी लंबी और मुश्किल है। उधर पिता का भी वीज़ा ख़त्म हो रहा है और जल्द ही उन्हें जर्मनी वापस लौटना है। *(डायचेवैले)*

काँव-काँव

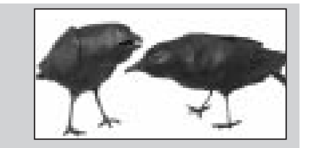

■ शराब की नीलामी है कि लॉटरी है?

■■ जो भी हो, मैं तो महीने के आखिर में सस्ती बिकने की राह देख रहा हूं...

चौपाल

राज्यसभा में महिला बिल के पारित होने पर नज़ाज़ा लखनवी का यह शेर –

''तेरे माथे पर ये आंचल तो बहुत खूब है लेकिन,
तुम इस आंचल से एक परचम बना लेती तो अच्छा था''

– तौहीद आलम, जशपुर नगर

आरक्षण – क्या अब भी जरूरी है?

सारे देश में इस समय आरक्षण के कारण बवाल मचा हुआ है। एक व्यक्ति, एक दल की गलत सोच किस तरह करोड़ों लोगों के जीवन को प्रभावित कर सकती है। भारत का कितना अहित कर सकती है। वर्तमान में डाक्टर और व्यवसाय प्रबंधन जैसे बेहद खर्चीले पाठयक्रमों में वर्ग विशेष के लिए अर्जुन सिंह के आरक्षण के माध्यम से देश में अगड़ों एवं पिछड़ों के बीच तथाकथित अंतर को पाटने का प्रयास कर रहे है। आज प्राय: हर व्यक्ति यह जानता है कि जिन पाठ्यक्रमों में आरक्षण को लेकर अर्जुन सिंह की नजर में पिछड़े लोग है। अनपे यहाँ हर वर्ग में एक क्रीमीलेयर बन चुकी है। अधिकांशतया प्राप्त अधिकारों का सर्वाधिक दोहन यही क्रीमीलेयर करती है।

Whisper to some one special...

I'd like to be reincar - nated as one of your tears, because I'd be born in your eyes, live on your face, and die on your lips

देश का गरीब आदमी जब और अधिक गरीब होता जा रहा हो, अवसरों का लाभ उठाकर अमीर और अमीर होते जा रहे हों ऐसे में आवश्यकता देश में गरीबी मिटाने की है सबको समर्थ व शिक्षित बनाने की है। भेदभाव की जहरीली फसल को अर्जुन सिंह खाद पानी दे रहें है। अंग्रेजो की फूट डालों राज करो की नीति अब तक भारत में षड़यंत्र रचने के लिये कुख्यात लोगों को एक प्रमुख शस्त्र बनी हुई है। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद जिन परिस्थितियों के चलते आरक्षण का बंदोबस्त किया गया था, आज देश में वैसी परिस्थितियाँ कतई नहीं हैं। गरीब की कोई जात नहीं होती। गरीब तो बस गरीब होता है। आधी शताब्दी गुजर जाने पर भी यह बात समझी नहीं जा सकी। यह देश का दुर्भाग्य है। जैसे हर वर्ग में गरीब है वैसे ही हमारे देश के सभी वर्गों में समान रूप से प्रतिभा सम्पन्न लोग भी है। उन्हें आज आरक्षण की बैसाखी की जरूरत नहीं है। अपनी क्षमता के बल पर वे अब आगे बढ़ने का हुनर बखूबी सीख चुके है। वे जान चुके हैं कि आरक्षण की दम पर केवल रोटी, कपड़ा और मकान ही हासिल किया जा सकता है किन्तु जिसके आगे सबाके नतमस्तक होना पड़े वह प्रतिभा मात्र आरक्षण से हासिल नहीं की जा सकती है।

संपूर्ण विश्व इस समय भारतीय प्रतिभाओं का स्तुतिगान कर रहा है। क्या ये आरक्षण के बूते हो सकता है? आरक्षण का मोहताज बनाकर व्यावसायिक क्षेत्र में चल रही गला काट प्रतियोगिता में वर्ग विशेष के लोगो को जिता पाना संभव नहीं है। इस सब पर विचार किए बिना ही देश को फिर आरक्षण की आग में झोंका जा रहा है। यह समय है इस बात की समीक्षा करने का कि देश के विकास में आरक्षण कितना सहायक रहा है? आज के परिवेश मे क्या और आरक्षण की आवश्यकता है। इस पर ठोस चिंतन के बाद ही कोई निर्णय लिया जाना चाहिए। बजाए देश का हित सोचे बिना राजनीति के गुरू घंटाल अपनी गौरख चालों से व्यक्तिगत व राजनीतिक फायदे की जुगत में देश के भविष्य के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। जनता से अब कड़ा भेदभाव के इन पितामाहों के खिलाफ सजग सकारात्मक विरोध इन्हें झुका देने तक जारी रहना चाहिए, ताकि आने वाले समय में आरक्षण का जिन्न फिर बोतल से बाहर न आ सके। गरीबीमुक्त सर्व समर्थ समाज से राष्ट्र का नवनिर्माण संभव है लेकिन आज का आरक्षण अवसरवादियों की कुटिल चाल मात्र है। देश में जागरूकता के माध्यम से ही आरक्षणवादी बीमारी का सही इलाज किया जाकर निजात पायी जा सकती है।

संजीव गौतम

एक ग़ज़ल गुनगुनाएं

एक बस तू ही नहीं मुझसे ख़फ़ा हो बैठा
मैं ने जो संग तराशा वो ख़ुदा हो बैठा

उठ के मंज़िल ही अगर आये तो शायद कुछ हो
शौक़–ए–मंज़िल में मेरा आबलापा हो बैठा

मसलहत छिन गई क़ुव्वत–ए–गुफ़्तार मगर
कुछ न कहना ही मेरा मेरी सदा हो बैठा

शुक्रिया ए मेरे क़ातिल ए मसीहा मेरे
ज़हर जो तुने दिया था वो दवा हो बैठा

जाने 'शहज़ाद' को मिनजुम्ला–ए–आदा पाकर
हूक वो उट्ठी के जी तन से जुदा हो बैठा

फ़रहत शहज़ाद

दीवारों पर लिक्खा है...

अक्सर मुस्कराने
वालों से बढ़ती है
दुनिया की औसत उम्र...!